नानकदेव का मानवतावादी दृष्टिकोण

*रामगोपाल मीणा

हिन्दी साहित्य की भक्तिकाव्य की निर्गुणधारा की विभिन्न शाखाओं और उनके प्रवर्तकों के बीच गुरु नानक के व्यक्तिव और उनके द्वारा प्रवर्तित 'सिक्ख सम्प्रदाय' का महत्व अत्यन्त अधिक है। नानाकदेव आपने युग के प्रगतिशील विचारक और समाजसुधारक थे, कबीर की भाँति उन्होंने किसी भी विचारधारा, धर्म या दर्शन का अधांनुकरण नहीं किया, बल्कि अपने जीवनानुभव व विचारों से ही अपना अलग मार्ग तैयार किया। उनकी बाणियाँ, उनके विचार एक धार्मिक आन्दोलन की अभिव्यक्ति नहीं होकर त्तकालीन सामाजिक विषमता, असंगतियों एवं असहिष्णुता के खिलाफ आदर्शवादी अभिव्यक्ति थी। इसी कारण उनके उपदेश और अमृतबाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी मध्यकाल में थी। ''निर्गुण संतो में कबीर के बाद नानक का व्यक्तिव संभवतः सबसे अधिक प्रभावशाली था। निर्गुण संतो में यदि किसी की वाणी और उसके द्वारा प्रवर्तित मत यदि आज भी उनके दृढ़ व संगठित रूप में मौजूद है तो वह नानक का मत है।''1 उन्होंने जाति, धर्म और भाषा के आध ाार पर टूटता, बिखरती मानवता को एक सूत्र में बाँधकर देश और समाज में साम्प्रदायिक समन्वय को स्थापित किया।

अपने समय के सच्चे युगदृष्टा गुरु नानक का जन्म 13 नवम्बर 1469 ई. को लाहौर–पाकिस्तान के नजदीक 'रांईभाई–तलवण्ड़ी' ग्राम में हुआ था। जिसे अब 'ननकान सहाब' के नाम से जाना जाता है। जहॉ प्रतिवर्ष कार्तिक–पूर्णिमा को सभी जाति व धर्मों के लोग गुरु दर्शन को जाते है। गुरु नानक खत्री (बनिया) जाति के थे। इनमें पिता का नाम कालुचन्द मेंहता व माता का नाम तृप्ता था। बचपन से ही नानक विचारशील, सरल और शांत प्रकृति के व्यक्ति थे। वे आरंभ से ही ईश्वर भक्ति, संत सेवा और आध्यात्मिक विषयों की ओर उन्मुख रहें, इसी कारण न तो उनका पढ़ाई–लिखाई में मन लगा और न ही नौकरी या व्यवसाय में। ''नानक को बचपन में पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत एवं फारसी की शिक्षा दी गई, किन्तु पुस्तकों से कहीं अधिक इन्हें एकांतवास और विचार करने का अभ्यास प्रिय रहा''2 पैतृक व्यवसाय में लगाने की इनके पिता की हर कोशिश नानक की आध्यात्मिकता के सामने नाकाम रही। अतः 17 वर्ष की अवस्था में सन् 1485 ई. को इनका विवाह 'सुलक्षणा देवी' के साथ कर दिया। इनको दो पुत्र हुए–श्रीचंद और लक्ष्मीचंद।

आरम्भ से ही नानक का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था। अतः उन्होंने घर–परिवार एवं अन्य सांसारिक सुखों व बन्धनों को छोड़कर दूर–दूर की यात्राएँ की। ''पहले पूर्व की ओर चले और सैयदपुर, कुरूक्षेत्र, हरिद्वार आदि तक हो आए। फिर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर भी जाते रहे। ये घूमते समय मार्ग में पड़ने वाले संतों व फकीरों से भेंट किया करते थें और उनसे सत्संग कर 'मर्दाना' के साथ एकांत में भजन गाया करते थे।'' उन्होंने चार चरणों में 25 सालों तक देश–विदेश का भ्रमण किया। पश्चिम में वह मक्का–मदीना तक गए, दक्षिण में उन्होंने श्रीलंका तक की यात्रा की, उत्तर में मानसरोवर चीन तक भ्रमण किया, जबकि पूर्व में असम, मेंघालय और मिजोरम की सीमा पार करते हुए म्यांमार की सीमा तक गए। जीवन के अन्तिम समय में नानक ने अपना उत्तराधिकार अपने प्रिय शिष्य 'लहना' को सौंप दिया जो बाद में गुरु 'अंगददेव' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 1539 ई. ईश्वर भक्ति में लीन होते हुए नानकदेव ने अपने प्राण त्याग दिए। अपनी यात्राओं कें दौरान नानक ने निम्न व दलित समझी जाने वाली जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाकर जाति–पाँति की व्यवस्था को तोड़ा, आडम्बर व कर्म कर्मकाण्डों के विरूद्ध लोगों को सचेत किया, समाज में फैली धार्मिक संकीर्णताए ऊँचनीच व छुआछुत का विरोध किया, मनुष्य समुदाय को आपसी भेदभाव भूलाकर आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। इस संदर्भ में डॉ. नग्रेंद्र भी लिखते है '' सभी दिशाओं की यात्रा के दौरान उनकी सभी धर्मों और मतों के अनुयायी संतों से भेट होती रही थी। फलस्वरूप समाज और धर्म के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा अनुभूति तथा समन्वय पर आधारित है। ध ार्मिक रूढ़िवाद, जातिगत संकीर्ण बंधन तथा अनाचारों के प्रति उन्होंने विरोध का स्वर उठाया।''4

नानक निर्गुण संतों में सबसे अधिक व्यवाहारिक और यथार्थवादी थे। अपनी उपदेशपरक यात्रा के दौरान उन्होंने समन्वय पर बल देते हुए दया, न्याय, और समता का प्रचार किया। मूर्तिपूजा, अवतारवाद और जातिगत संकीर्णता का खण्डन किया, जनसमुदाय को अपने अहं का परित्याग कर, जाति एवं धर्म के भेद को भूलाकर साम्प्रदायिक समन्वय स्थापित करने का सन्देश दिया।

उदा – **साधो मन का मान त्यागो।**
काम, क्रोध, संगति, दुर्जन की ताते अहनिस भागो।
सुख–दुख दोनों समकर जाने और मान–अपमाना।
हर्ष–शोक ते रहे अतीता तिन जग त्तव पिछाना।

नानकदेव के अनुसार सारी मानवजाति एक है। ईश्वर की दृष्टि में सभी समान है। जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्र की भिन्नता की बात मनुष्य करता है। गुरु नानक वास्तव में ही अपने समय के महान, समाज सुधारक और मानवतावादी थे। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल लिखते है कि – ''वस्तुतः देखा जाए तो नानक उन महात्माओं में सें थे जिन्हें हम

*शोधार्थी : महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय-वर्धा (महाराष्ट्र), 442001

संकुचित अर्थ में किसी एक जाति अथवा धर्म का नहीं बतला सकते। समस्त संसार का कल्याण करना उनका ध्येय था । इसीलिए उन्होंने हिन्दु–मुसलमान दोनों की धार्मिक–संकीर्णता का विरोध किया ।''5 दिशाभ्रष्ट समाज को सही दिशा में लाना उनका प्रथम लक्ष्य था, उनकी भावना थी कि मनुष्य जाति आपसी भेदभाव, ईर्ष्या एवं द्वेष को भूलाकर समन्वय बनाकर रहे ताकि एक अच्छे समाज की स्थापना हो। नानकदेव ने स्पष्ट कहा कि ईश्वर एक ही है, लेकीन समाज की जातिगत संकीर्णता ने उसे विभिन्न धर्मो व सम्प्रदायों में बाँटकर सम्पूर्ण देश को, मानवता को अंधकार की ओर धकेल दिया है।

उदा.**''चार वरन चार मजहबा, जगबिच हिन्दू – मुसलमाणे**
खुदी, बखीली, तक्कबरी, खिचोतान करणे धिणाणे
गंग बनारस हिन्दुंआ, मक्का काबा मुसलमाणे
राम–रहीम कहाइंदे, इक्क नाम दुई राह भूलाणे''6

नानकदेव ने मनुष्य मात्र को अच्छा कर्म करने की सलाह दी और कहा कि जन्म से कोई बड़ा या छोटा नहीं होता केवल कर्म से ही उसकी जाति, गति और नियति तय होती है। उन्होंने कहा कि–''जाणहु जाति न पुछह जाति आगै जात ना है।'' उन्होंने अपनी बाणियों में कहा कि आचरण की पवित्रता, कर्म और भावणा की शुद्धता एवं परोपकार व सेवा से ही ईश्वर को पहचाना जाता है। नानक कबीर की भाँति अपने युग की परिस्थितियों तथा वातावरण के साँचे में ढले एक स्वतंत्र विचारक और समतावादी थे। उनका मानना था कि समाज सुध ाारक के वे ही प्रयत्न सफल हो सकते है जो मानव के अन्तर्मन झकझोरकर उनकी चेतना व विवेक को जगा सके, ईसी कारण उन्होंने हृदय की शुद्धता तथा आचरण की पवित्रता, सत्य, अहिंसा और प्रेम पर बल दिया, क्योंकि यही वो त्तव थे जिनके माध्यम से व्यक्ति का हृदय परिवर्तन किया जा सकता था। ''कबीर सिद्धांतो और नियमों की प्रखरता में अपनी गरिमा दिखलाई, चैतन्य ने हृदय की शुद्धता और व्यक्तिव के आकर्षण से त्तकालीन समाज को प्रभावित किया, नानक में शुद्ध और पवित्र व्यवहारिक आचरण की प्रधानता थी।''7

नानकदेव एक संत होने के नाते मानव जीवन की नश्वरता की बात करते है तो दुसरी और मानवतावादी होने के नाते सामाजिक जीवन में व्याप्त हर प्रकार की विषमता व विंताडतावाद की आलोचना भी करते हैं। निर्गुणधारा के नानकदेव एकमात्र ऐसे संत–विचारक थे जिन्होने समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा को दूर करने का प्रयत्न किया, समाज में उनको सम्मान दिलाने और पुरुषों की बराबरी का दर्जा दिलाए जाने का भरपुर समर्थन किया।

'' भंड जयी औ भंडी निमीओ भंड मंगण बीआहु ।
भंडहु हौवै दोसती भंडहु चलै राहु ।
भंड मुआ भंड मालीओ भंड हो वे बंधान ।
से किउ मन्दा आखी अहि जित जंमै राजान ।''8

(अर्थात् जन्म देने वाली भी नारी, पत्नी के रूप में भी नारी, फिर उसकी अवमानना क्यों) इतना ही नहीं नानकदेव ने समाज में पददलित समझी जानेवाली जातियों को भी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक हर स्तर पर मुख्यधारा में शामिल करने का सजग प्रयास किया –

नानकदेव की वाणी जनता के लिए चेतावनी भी थी और प्रेरणा भी थी । वे सच्चे लोक नायक और महान समाज सुधारक थे । डॉ. मनमोहन सहगल लिखते है कि ''जब भारतीय समाज नाना सम्प्रदायों, वर्गो और जाति–उपजातियों में बट चुका था, सशक्त वर्ग अशक्त पर अनाधिकार अत्याचार कर रहा था, अनेक प्रकार की विचारधाराऐं जीवन–शैलियाँ पनप रही थी, भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों पर गम्भीर विवादों का बाजार गर्भ था, हिन्दु जनता के सम्मुखम धार्मिक व आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त राजनैतिक स्थिति का त्रास ज्यादा आतंककारी था, धर्म के नाम पर परस्पर ईर्ष्या, वैर और संघर्ष सजग हो रहे थे, तब किसी ऐसे महापुरुष की आवश्यकता थी जो समाज की उक्त विश्रृंखलता के नाना–विचारों को समन्वयवादी योग सूत्र में बाँध सके। गुरुनानक उस आवश्यकता की पूर्ति थे।''9

अतः निष्कर्षतः कह सकते है कि नानकदेव अपने समय के सच्चे युगदृष्टा लोकनायक थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन मानव–सेवा के लिए अर्पण कर दिया। उन्होंने अपने जीवन–दर्शन में जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, निरपेक्ष मनुष्यता को स्वीकार किया, उन्हें निःसंकोच आधुनिक अर्थो में मानवतावादी कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, (वाराणसीःनागरी प्रचारिणी सभा, संवत्2019), पृ. 27.
2. परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, (इलाहाबाद : किताबमहल, 1952), पृ. 236.
3. वहीं पृ. 237.
4. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (नोएडा : मयूर पेपर बैक्स 2004), पृ. 131.
5. डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (लखनऊ : अवध पब्लिशिंग हाऊस), पृ. 64–65.
6. डॉ. मनमोहन सहगल, संतकाव्य का दार्शनिक विवेचन (चंडीगढ : भारतेन्दु भवन 1965), पृ. 265.
7. डॉ. मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा), पृ. 108.
8. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन 2002), पृ.94.
9. डॉ. मनमोहन सहगल, संतकाव्य का दार्शनिक विवेचन (चंडीगढ : भारतेन्दु भवन, 1865), पृ. 259.